

बशीर अहमद मयूख

विजयादशमी 16 अक्टूबर सन् 1926 को राजस्थान के कोटा जिले के छोटे से गाँव में जन्म, विद्यार्थी काल में 1942 के स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लिया। सन् 1972 तक समाजवादी पार्टी से सम्बद्ध सक्रिय राजनीति में रहे। आम चुनाव में विधान-सभा के लिए सोशलिस्ट प्रत्याशी तथा कोटा पार्टी के जिलाअध्यक्ष रहे। सन् 72 से दलगत राजनीति से सन्यस्त। सन् 42 से कविता-लेखन प्रारम्भ किया तथा देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में सन् 50 से छपना आरम्भ हुआ। पेशे से किसान।

प्रकाशित पुस्तकें :

1. 'स्वर्ण रेख' : ऋग्वेद के ऋचा-मंत्रों का काव्य-रूप। सन् 72 में भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली से प्रकाशित हुई तथा प्रधानमंत्री ने विमोचन किया।
2. 'अर्हत' : जैन आगम-सूक्तों का काव्य रूपान्तर 76 में प्रकाशित तथा राष्ट्रपति द्वारा विमोचन। •
3. 'सूर्यबीज' : गीत-कविता संग्रह 78 में प्रकाशित।
4. 'ज्योति पथ' : वेद, कुरान, गीता, उपनिषद, जैन-बौद्ध आगम सूक्त, गुरुग्रन्थ आदि का काव्य रूपान्तर सन् 84 में प्रथम तथा 87 में दूसरा संस्करण राजपाल एन्ड संस दिल्ली से प्रकाशित तथा देश-विदेश में चर्चित।
5. 'गुमशुदा की तलाश' : सांस्कृतिक निबन्ध संग्रह 85 में किताब घर दिल्ली से प्रकाशित।

लेखन की मूल दृष्टि :

राष्ट्रीय एकता साम्प्रदायिक सद्भाव एवं किसी भी नाम पर मनुष्य के बीच भेद के विरुद्ध।

(क्रमशः दूसरे फ्लैप पर)

सूर्यबीज
(कविताएं)

विकास पेपर बैक्स
मेन रोड, गांधी नगर, दिल्ली-110031

सूर्यबीज

बशीर अहमद 'मयूख'

डा० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी को समर्पित
जिनका विधिवेत्ता मन
मनुष्य के स्वर्णिम विहान का
विधान
खोजता है

'मयूख'

कवि कथन

संक्षेप में कहना है, विस्तार में कविता कहेगी। कविता हमारी पीढ़ी का वक्तव्य है, शताब्दी के समापन-छोर पर खड़े हम, देश और दुनिया को खुली आँखों से देख, अपनी बात कह रहे हैं। गुफ़ा से अन्तरिक्ष-संचरण की काल-यात्रा के पश्चात् उपलब्ध दुनिया हमारे सामने है। ऐसी दुनिया जिसका हर सवेरा इन्सानियत की दर्दनाक चीख लेकर आता है। बारूद के ढेर पर बैठी एक ऐसी दुनिया जो अपनी आधी आबादी को नंगा-भूखा रखकर अपना आधा बजट युद्ध पर खर्च कर रही है। एक ऐसी दुनिया जो रंग, धर्म, देश, भाषा, शासक और शासित के नाम पर बुरी तरह बाँट दी गई है। कुछ मदारियों की डुगडुगी पर नाचती दुनिया हमारे सामने है। कहाँ आंतरिक अशान्ति और युद्ध भेजना है—कहाँ धर्मोन्माद और तानाशाही; कहाँ राजनीतिक हत्याओं का दौर चलाना है और कहाँ फ़ौजी क्रान्ति कराना है—ये सारे फ़ैसले और इनका कार्यान्वियन ये कुटिल नियामक शक्तियाँ पूरी सामर्थ्य से कर रही हैं। दुनिया को कई बार ध्वंस कर देने की आयुध-क्षमता से सन्नद्ध इन नियामक शक्तियों से पूछा जाना चाहिए—क्या शताब्दी का समापन-छोर मनुष्य जाति का भी समापन-छोर बनेगा? उस इन्सान का जो 'अहम् ब्रह्मास्मि' क़ुरान की भाषा में कहें तो 'अशरफ़ुलमखलूक़ात' (सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ) जैसे श्रेष्ठ विशेषण अपने नाम के साथ जोड़ता आ रहा है; प्रकाश-वर्ष दूरस्थ लोकों को टटोलने वाली मनुष्य-जाति की क्या यही नियति है?

बात देश के सन्दर्भ में कही गई हो या दुनिया के, 'सूर्यबीज' एक पूछा जाने वाला सवाल है। सवाल के साथ ही कविता हमारा उत्तर भी है—नहीं, हम ऐसा नहीं होने देंगे, हमने अपनी क़लमों में बारूद से बग़ावत करने वाली रोशनाई भर ली है। हम अकेले नहीं, धरती के ओर-छोर फैले क्रान्ति-द्रष्टा कवि अँधेरे के गर्भ में प्रकाश के बीज रोप रहे हैं। ज्योति का उदय होना ही है। हर अँधेरे के खिलाफ़ *हमारा युद्ध जारी है, नहीं है हमारे हाथ में सुलह की सफ़ेद पताका। अन्तिम जीत हमारी है।* प्रतीक्षारत हैं अनुपलब्ध विजय के अघोषित तूर्य।

मेरी धारणा है अब कोई विश्वयुद्ध नहीं होगा। विज्ञान के विध्वंसक 'रुद्र' को कल्याणकारी 'शिव' बनना पड़ेगा, इसीलिए मनुष्य जाति विषपान कर 'नीलकंठी' बन रही है।

मेरी यह भी धारणा है कि मनुष्य की समस्याओं के समाधान राजनीति में बिल्कुल नही हैं जहाँ कि उन्हें ढूंढा जा रहा है। राजनीति समाधान के नाम पर केवल समस्याएँ देती है। हमें अपना भविष्य विज्ञान-सम्मत दर्शन और अध्यात्म मे ही कही खोजना पडेगा। इस क्षेत्र मे, आशाजनक संभावनाओ के साथ इधर एक नई बात हो रही है और वह है विज्ञान और अध्यात्म का पारस्परिक सहयोग; दोनों एक-दूसरे के पूरक-परिपूरक बनते जा रहे हैं। आकाशगंगाओं मे व्याप्त सृष्टियो के अस्तित्व-ज्ञान से सम्पन्न विज्ञान अपने अनेक अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर अध्यात्म से प्राप्त कर रहा है।

"वह परब्रह्म सब प्रकार से पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है, इस पूर्ण से ही वह पूर्ण उत्पन्न हुआ है, पूर्ण के पूर्ण को निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष बचता है।" उपनिषद् का यह सूक्ष्म मन्तव्य स्वयं में 'विराट' की समर्थ और विस्तृत व्याख्या है। अब तक केवल धर्म और दर्शन-ग्रन्थ आध्यात्मिक भाषा में इस विराट का स्वरूप बताते रहे हैं, विज्ञान को इसमें दखल देने का अधिकार नहीं था [अनधिकृत चेष्टकों को जीवित जलाया गया], लेकिन आज स्थिति बदल गई है। इक्कीसवी सदी के प्रवेश-द्वार पर खड़ा इन्सान विज्ञान की भाषा में भी उस विराट को आवाज़ दे रहा है।

सत् और ऋत से उत्पन्न एवं परिचालित सृष्टि का आध्यात्मिक विधान विज्ञान के लक्ष्य-सधान का समर्थ सहयोगी है। समष्टि मे व्याप्त स्रष्टा-शक्ति का विराट रूप हम विज्ञान की रोशनी मे भी अनुभूति की आँखो से देख सकते है जिसे मनुष्य-जाति के सर्वप्रथम ज्ञात-ग्रन्थ ऋग्वेद मे 'ते शतं शतं भूमिसतस्युः सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी'[1] कहकर व्यक्त किया गया है। परमाणु का शक्ति-विस्तार देखकर लगता है कि युद्ध-भूमि में खडे वासुदेव कृष्ण अपना मुख फाड विराट विश्व दिखा रहे हैं। 'अहं ब्रह्मास्मि', 'एकोहं बहुस्याम्' अथवा मुस्लिम दर्शन के 'अनलहक', 'कुनफ़िकुन' तथा 'तत्वमसि', 'सोहम्' जैसे आध्यात्मिक उद्घोष वैज्ञानिक घोषणाएँ भी लगती हैं। मनुष्य की अतीन्द्रिय टेलिपैथिक शक्ति पैगम्बरों के 'इलहाम' और मनीषी ऋषियों के मंत्र-बोध को प्रभावित कर रही है।

प्रकाश वर्षों दूर स्थित लोकों का सघानी विज्ञान भौतिक उपकरणों से इन तक संचरण नही कर सकेगा। *विज्ञान की अगली यात्रा अध्यात्म की सीढ़ियाँ चढ़कर ही होगी।* विज्ञान और अध्यात्म प्रकृति और पुरुष के इस मिलन-मथन से

---

1. परे नयन से है जिनका अस्तित्व अभी तक
   हैं ऐसे नक्षत्र-लोक अनगिनत सहस्रों
   नहो एक भूमण्डल उसके अनुशासन में
   शत-शत सूर्यों से आलोकित अन्तरिक्ष हैं।

एक नई संस्कृति लेकर एक नया इन्सान जनमेगा—'सूर्यबीज' उसी का बीजारोपण है—प्रसव-पीड़ा है।

हजारों साल के गुजरे अतीत से जनमे हम कुछ सौ साल आगे के भविष्य में क्यों न झांकें? मनुष्य जाति के इतिहास मे सौ हजार साल कोई खास गिनती नहीं रखते। 'सूर्यबीज' उसी ज्योति-जगत का आराधन-मन्त्र है जिसकी कामना ऋग्वेद में 'यत्र ज्योतिरजस्रं अरिमन् लोके स्वहितम्' कहकर की गई है। विज्ञान के रुद्र को कल्याणकारी शिव बनाकर हम अपने बीच इस 'ज्योति-लोक' का आविर्भाव कर सकते है। असत् से सत्, अन्धकार से प्रकाश की ओर जाने वाली इस यात्रा में मेरा काव्य-चिन्तन आपका सहयात्री बने यही कामना है—

प्रस्तुत संग्रह में कई तरह की कविताएं मिलेंगी। वक्तव्य के मूल कथ्य से असम्बद्ध भी लग सकती हैं, प्रबुद्ध पाठकों को सन्तुष्ट न करने वाली 'भाषण छाप' कविताएं भी मिलेंगी। युद्ध के विरुद्ध होने पर भी देश पर जबरन युद्ध थोपे जाने पर मौन दर्शक नहीं रह पाया हूं; इन सबके लिए इतना ही निवेदन करना है कि कविता को कर्म न मानकर धर्म माना है, क्या लिखना है और क्यों लिखना है—इन दोनों सवालों के निश्चित उत्तरों से अवगत हूं। राजनीति से दलगत प्रतिबद्धता न होने पर भी इस कुटिल सुन्दरी को निर्वसना देखा (भोगा भी) है अतः कविता में इसका रूप-अरूप वर्णन भी मिलेगा, लेकिन साहित्य और राजनीति के रिश्ते की नजाकत बरकरार रखते हुए ही बात कही है, जैसे देश में सन् '76 के सत्ता-परिवर्तन में विदेशी धन की भूमिका के लिए कहा—

ये क्या हुआ जो राम को वनवास मिल गया?
सोना-हिरन ने आन के फिर से छली सिया!

अथवा पूंजीवादी शोषण के लिए कहा—

एक सुनहरे सांप ने हमसे कहा
आदमी के दांत मे विष-कोष होता है।

अथवा अंतरिक्ष और विज्ञान के विध्वंसक दुरुपयोग और शान्ति के श्वेत कपोत के सन्दर्भ में कहा—

वो जमीं छोड़कर खलाओं मे
अपना ही डर तलाशने निकले।
जो कबूतर उन्होंने मारा है
उसके ही पर तलाशने निकले।

अधिक उदाहरण देना अनुपयुक्त होगा। 'सूर्यबीज' के पीछे एक सुनहरे दिन के उदय की कामना है। मनुष्य जाति के स्वर्णिम विहान का विधान खोजने वाले सुधी पाठक मुझे आशीर्वाद दें, इसी कामना के साथ—

बशीर अहमद 'मयूख'

क्रम

काले भोर की चीख़

और फिर उस दिन
जब बरगद गिरा
ज़मीन को थरथराना ही था,
लेकिन ज़रूरी नहीं था
आदिम गुफ़ा से वहशी दरिन्दे का निकल आना !

दरिन्दा नहीं है कहीं बाहर
सहयात्री है गुफ़ा से अंतरिक्ष तक ।
वह नहीं है आर्य, स्लाव या मंगोल
लेकिन ओढ़कर आदमी का खोल
रच देता है इतिहास
बदल देता है भूगोल !

वह जब प्रकट होता है
अपने डरावने डैने फैला
बैठ जाता है अंधकार
इन्सानी रिश्तों पर,
और निर्वीर्य पीढ़ियाँ उगाने लगती हैं
उदास नस्लों की फ़सल,
हम नहीं रहते तब
व्यक्ति, समाज या देश,
भूगर्भ में और गहरा गड़ जाते हैं
मिस्र, मेसोपोटेमिया,
सिन्धु-सभ्यता के पुरावशेष ।

और फिर उस दिन
जब काला भोर उगा

अँधेरा तो आना ही था,
लीन हुई थी एक तेजोमय ज्योति
परात्पर दिव्य पुरुष में।
मुण्डकोपनिषद् गाता रहा मंगलाचरण—
'परात्परं पुरुष मुपैति दिव्यम्'
धैर्य बँधाता रहा गीता का श्लोक—
'न हन्यते हन्यमाने शरीरे'
इसके बावजूद उस दिन हमें
क्षमा करें शास्ता, क्षमा करें ज्ञान-ग्रंथ,
उस दिन हमारे सर से सरसराता हुआ
गुज़र गया ज्ञान का गायत्री-मंत्र—
'धियो यो नः प्रचोदयात्'
उस दिन हमारे भीतर के दरिन्दे ने
गाड़ दिया था हमारी छाती पर
कृतघ्नता का शिलालेख
[हमें क्षमा करे हमारा विवेक]

और फिर उस दिन
जब काला भोर उगा—
हमें लगा—आकाश से उतरी
पवित्र क़ुरान की एक आयत
फिर आकाश में चली गई।
द्यौ से पृथ्वी पर प्रकटी एक वेद-ऋचा
द्रष्टा ऋषि का दिव्य मंत्र
फिर ब्रह्मांड में विलीन हुआ।

उस दिन फिर एक सलीब ने सूनी कर दी
माता मरियम की गोद।
चीखता रहा गुरु-ग्रन्थ
'जपुजी' का शबद-कीर्तन—
"भरीए मति पापा कै संगि
ओहु धोपै नावै कै रंगि'

और फिर आज ईसा की वाणी में
प्रार्थना है—'प्रभु इन्हें क्षमा करना
ये नहीं जानते ये क्या कर रहे हैं'

धर्मगुरुओ, शास्ताओ,
संतो, राजनेताओ, तुम्हारे लिये
प्रार्थी है तुम्हारी पीढ़ियों के
पाप धोने वाला कवि,
क्योंकि तुम खूब जानते हो—
अपने सनातन, पुरातन,
आध्यात्मिक देश के साथ
तुम क्या कर रहे हो।

तुम्हें क्षमा करे ईश्वर
क्षमा करे खुदा
क्षमा करे अकाल पुरुष।

उसे बार-बार मारा

हमने उसे बार-बार मारा
वह फिर-फिर जी उठा
कई बार ऐसा लगा
वह बिल्कुल मर गया है।

उसकी छाती में सूराख कर
काँटों का ताज पहिना
सलीब पर टाँग दिया,
फिर भाषा, प्रदेश, सत्ता
और रंगीन चमड़ी के भोथरे हथियारों से
उसकी आत्मा के छोटे-छोटे टुकड़े चीर
सड़कों, चौराहों, गलियों में
आग और खून की ठंडक में फेंके,
और उसकी मृत्यु की
निश्चित पुष्टि के लिए
इतिहास की धड़कनों पर कान लगाये,
आश्चर्य, वह जी रहा था मृत्युञ्जय।

काल का अंतराल चीर
दूर से उसकी आवाज़ आ रही थी—
'धम्म शरणम् गच्छामि'
'धम्मो मंगल मुक्किट्ठम्'॥

हमने कई बार उसे
दूसरे मुर्दों के ताबूत में बन्द कर दफ़नाया
पर वह हमेशा अपना सलीब

कंधों पर उठाये हमारे बीच
आ खड़ा हुआ।

फिर हमने दो भयानक अपराधियों को
उसकी मृत्यु का दायित्व सौंपा,
उसकी पसलियों में पूरी गहराई तक
एक छुरा ईश्वर ने घुसेड़ा
दूसरा अल्लाह ने,
और हमें लगा—इस बार वह
सचमुच मर गया है।

किन्तु आश्चर्य, वह फिर भी जी रहा था।
और भी आश्चर्य—वह हमेशा
अपने हत्यारों को एक ही नाम से
पुकारता जी उठता है—
'ईश्वर-अल्ला तेरे नाम'।

लगता है वह मर नहीं पाता,
लगता है वह मर नही पायेगा
क्योंकि उसकी मृत्यु से
बेचारा इन्सान मर जायगा
और इन्सान को अपनी पूरी इन्सानियत के साथ
अभी जिन्दा रहना है।

बुद्धिजीवियों का क़त्ल
[बांग्ला देश]

और फिर उस दिन
अनेक अनाम सूर्य
इतिहास के बदनाम अँधेरों में कौंध गये।

चैतन्य हवाएँ
अपनी छाती पर सलीब उकेरतीं
मुर्दाघर के रोशनदान से गुज़रीं।

'नज़रुल' की नज़्में
रवीन्द्र-संगीत
'पद्मा' के होंटों से निकले रोशनी के गीत
सूली पर चढ़ गये।

और फिर उस दिन
जो कयामत का दिन पुकारा गया—
'उसका' इजलास लगा
उसने देखा—मुलजिम के कठघरे में
वह ख़ुद खड़ा था।

मित्रो, नहीं जाती यह सड़क सिर्फ़
सुकरात के होंठों से
गांधी के सीने तक।

एक संघर्ष-चेता सूर्य
[डा० लोहिया]

एक संघर्ष-चेता सूर्य
सत्तावन जलती ऊष्माएँ समेट
काल के गहवच्चे में गिर गया।

एक प्रबुद्ध-चेता स्वर
चिन्तन के बौद्धिक आयाम नाप
छोड़ गया अपनी अनुगूँज—
सावधान-सावधान !

एक समचेता स्वर मौन हुआ
नहीं-नहीं-नही
वह तो चिर शाश्वत है
भन्ते जन सुनें
भन्ते गण सुनें
टेक्सास के होटल में गोरे-काले गले
आपस में मिलें।

वह स्वर तीखा था ?
कैक्टस की रक्षा-पाँत की ओर
गुलाब खिलें।

उसने फाड़ना चाहे अज्ञान के आधार पर बाँध
और परिणामहीन लफ़्फ़ाज़ी के शब्द-कोश
ओ भाई खरीद सकते हो
तीन आनों में अपना कफ़न ?

ओ प्रिय, ओ बहिन, ओ माँ
तुम्हारे रसोईघर के चूल्हों का धुआँ
अब किन आँखों में घुमेगा ?

उसे कांटों ने आठ पत्थर मारे
तो फूलों ने दस।
तपेदिक के फेफड़ों को लूटते द्वारों से
वह निकला अंतिम बार।
एक संघर्ष-चेता सूर्य
एक क्रान्ति-घोषा-सूर्य

इससे पहिले

[जय प्रकाश]

अत तो होता है मरण-धर्मा रात का
लेकिन निर्वंश सपनों का बोझ
सूर्य नहीं ढोता ।

मौसम जब गुस्ताख़ होता है—
स्वच्छन्द हवाओं के साथ पगलाया शोर
चुभा देता है हर दिशा की देह में
ज़हर-बुझे पिन ।
और पूरब की कोख से फिर जन्म लेता है
एक रक्त-गंधी दिन ।
दिन जो चन्दन-गंधी भी हो सकता था—
काश और तेजस्वी होता बूढ़ा आकाश
पी लेता पगलाया शोर ।

दुख मत करो
निर्वीर्य सपनो के गर्भपात पर
यह तो होना ही था ।
नपुंसक नारों का बोझ
भीड़ को ढोना ही था ।

वे फिर उतार लेंगे आकाश से
किसी देवता का रथ
उसकी जयघोष का हमारा अधिकार
सुरक्षित है ।

दुख मत करो, राजपुत्रों के पक्ष में
हमेशा ही काटे गये हैं
एकलव्यों के अँगूठे।

वे फिर लिटा देंगे शर-शैया पर कोई भीष्म।
फिर हँसेगी पांचाली सुनकर अंतिम उपदेश
फिर बाँटेंगे धर्मराज नर-कुंजर के द्वन्द
और अंधे धृतराष्ट्र सुनते रहेंगे—
संजय उवाच।

शक मत करो
निर्विवाद है शैतान की ईमानदारी
वह जब-जब प्रकट हुआ
नकाबें उलट दी फरिश्तो के चेहरों से।

हम भेजते रहे हैं प्रणाम,
सिंहासन छोड जंगल मे जाने वालों के नाम,
वे बुद्ध हों या मर्यादा पुरुषोत्तम राम।
कोई तीर्थंकर या अर्हन्त,
या हरिजन-बस्ती का सन्त
उन्हे प्रणाम !

आश्चर्य मत करो
ईश्वर को गाली देकर भी
उसकी जय बोलने का अधिकार
सुरक्षित है।

मेरे बन्धु
एकांत संगीत हो या सामूहिक जुगलबन्दी
सर हिलाने से पहिले सोच लो
इतिहास के दंश कोई अकेली पीढ़ी नही,
भोगते हैं कई वंश।

इसलिए, आओ, हम यज्ञ करें,
इससे पहिले कि हवाएँ पागल हो जायें
सी डालें अपनी नाव के फटे पाल।
इससे पहिले
कि दिशाएं फेंकें भ्रमजाल
जागें दिग्पाल,
नागों की समिधाएँ डाल
आओ हम यज्ञ करें—
जनमेजय-यज्ञ…

इस बार पितामह सुनें

वे गाड रहे है रेत मे
अपने शुतुर्मुर्गी शीश
तूफ़ान आयेगा।
उनसे कहो, पलायन का नाम
क्रांति नही होता

वे लाद रहे हैं अपनी पीठ पर आकाश
टिके होने का चमगादड़ी भ्रम,
बन्द आँखो वाले खरगोश
आँज रहे है पीढ़ी की आँख में
भविष्यहीन अंधकार
उनसे कहो, इन्कलाब मरता नही
जग अभी जारी है।

हमने भोगे हैं व्यवस्था के सिंहासनों पर आसीन
अंधे धृतराष्ट्रों के पुत्र-प्रेम,
कई बार।
और हर बार लद गया है हमारे सर पर
महाभारत के अठारह पर्वों का भार।

किन्तु इस बार, पितामह सुनें
नही है हमारे हाथ मे सुलह की सफ़ेद पताका।
इस बार हम नही पढ़ेंगे शांति का अठारहवाँ अध्याय
सुनें सप्त महारथी, इस बार गर्भस्थ अभिमन्यु
सीख गया है व्यूह से वापस आना।

सुनें बंद आँखों वाले खरगोश
हमारा जनार्दनी घोष—
'धर्मक्षेत्रे या कुरुक्षेत्रे'

युद्ध अभी जारी है
धर्म-युद्ध जारी है
जन-युद्ध जारी है
नही है हमारे हाथ में सुलह की सफेद पताका।

जन्नत के दरवाज़े पर

जन्नत के दरवाज़े पर एक कल्पवृक्ष है,
कल्पवृक्ष, एक पेड़;
पेड़, जिससे बनती है कुर्सी,
कुर्सी, जिस पर बैठता है नेता,
नेता, पूंजी का, सत्ता का,
धर्म का, व्यवस्था का,
कलियुग का, द्वापर का, त्रेता का।
सचमुच एक कल्पवृक्ष है जन्नत के दरवाज़े पर।

जन्नत, एक ऐश्वर्य-भोग
जिसे भोगती है धूर्तों की आखिरी जमात।
जमात, पूंजी की, सत्ता की,
धर्म की, व्यवस्था की,
द्वापर की, त्रेता की, नेता की।

मित्रो सावधान, इस जमात ने
अपने घोड़ों की रास
उस पेड़ से बांध दी है।
सावधान, सावधान !!

रोशनी के नाम ख़त

रोज़ साँझ को, सूर्यबीज बो,
काटते रहे भोर की फ़सल,
कोटि कंठ की प्यास छीनकर
बाँटते रहे आचमन का जल
इस क़दर चढ़ा ज्योति का नशा,
पोथियों में खो गई स्वर्ग की दिशा,
और हम खड़े, दीप के तले
रोशनी का रास्ता देखते रहे।
　　　　कुंडली के गंध-चोर उस हिरन के नाम
　　　　उस हिरन के नाम एक खत लिखो,
　　　　रोशनी के नाम एक खत लिखो।

पीढ़ियाँ ढली, काल ढो रहा
वर्ण-वर्ग के कर्म-माल को,
शास्ता बने हुक्म लिख दिया
नर्क-स्वर्ग के द्वारपाल को।
इस क़दर उड़ी काफ़िलों से धूल,
गुम गये गुबार में लक्ष्य के दुकूल,
और हम खड़े, राह से परे
चरैवेति-चरैवेति टेरते रहे।
　　　　स्वप्न-दंश से जले उस गगन के नाम
　　　　उस गगन के नाम एक खत लिखो।

पनघटों में क़ैद पीढ़ियों की प्यास,
भूख के कफ़न, आदमी की लाश,
ओढ़कर कफ़न, अनपढ़ी किताब,

अर्थ पा सके शब्द इन्क़लाब,
धर्म-देश का रक्त देवता
पीढ़ियों से आदमी का खून पी रहा
और हम खड़े घोपते रहे—
'सर्वजन हिताय—सर्वजन सुखाय ।'
धर्म-दंश से जली इस धरा के नाम
इस वतन के नाम एक खत लिखो
रोशनी के नाम एक खत लिखो ।

भूख

चिलचिलाती धूप में मँडराती चील।
ताजे तावूत में ठुकी हुई कील!
हवाओं मे घुटी हुई मरघटी गंध।
कोई नही जीने की देता सौगंध!

कस्में देवाय, अरे कस्में देवाय?
कापालिक आवाज़ें पूछती सवाल
सलीबों पर टँगी हुई युग-पुरुष भीड
चेहरों को देख रही आइना निकाल!

शिथिल हुए कालजयी काफिलों के पाँव।
सहम गई घोसला बनाती अबाबील!
चिलचिलाती धूप में मँडराती चील
ताजे तावूत में ठुकी हुई कील

एक काल-पत्र और गाड़ दो

समय की शिलाओं पर
खोद कर दिशाओं पर
एक काल-पत्र और अंकित कर गाड़ दो !

जितने बेकारों का बोझ सड़क ढोती है,
जितने लाचारों की भूख-मौत होती है,
जितने संत्रासों को जन-गण-मन भोग रहा—
इन सब षड्यन्त्रों में जिन-जिनका योग रहा
जो कुछ हम देख रहे सबका उल्लेख रहे
इन घुटी हवाओं पर टंकित कर गाड दो।
एक काल-पत्र और अंकित कर गाड दो।

यह शापित युग जिसमें काल-पुरुष जीता है
हर भ्रम का रेत-हरिण छल-जल को पीता है
रंग, धर्म, देशो मे बँटा हुआ आदमी
अपनी परिभाषा से कटा हुआ आदमी
इन सब आरोपों के, अणु-बम के, तोपों के
इतिहासी प्रश्न-चिह्न शंकित कर गाड दो।
एक काल-पत्र और अंकित कर गाड़ दो !

अग्नि को कुरेदो तो शब्द की शलाका से,
हर नकली सूर्य-पुत्र जल जाता राका से,
ओ मेरे गीतकार जन से अनुबंधित हो
शुभ का संकल्प करो, युग से सम्बोधित हो।
जो कुछ भी सत्यं शिव जो कुछ भी सुन्दरम्
गीतों मे स्वस्ति-राग झंकृत कर गाड़ दो।
एक काल-पत्र और अंकित कर गाड़ दो।

उन्मेषी जनमेजय

सड़कों-चौराहों पर हर दफ़्तर-द्वारो पर
कटे हुए अँगूठों को लिए खड़े एकलव्य
कैसे शर संधानें—प्रत्यञ्चा को तानें
धनुधारी अर्जुन के हित-साधक बाधक है।

द्वापर के द्रोणों के कलयुगी मुखौटों से
शोषण-षड्यन्त्रों की दुर्गन्धें आती है
वैभव की चौसर पर ममता की द्रौपदियाँ
शकुनी के पांसों से हार-हार जाती है।

हर ठंडे चूल्हे का तरसाया भूखापन
सोने का मृग दिखला दशकंधर छलता है
अभिशापित रामों की सीता के आँसू से
संत्रासित पीढ़ी का दंडकवन जलता है।

यज्ञों की समिधा मे नागों को होमेगा
आक्रोशी पीढ़ी का उन्मेषी जनमेजय
धनुधारी अर्जुन के हित-साधक सूचित हो
हिंसक हुंकारों को लिये खड़े एकलव्य।

जलते अगारो को लिये खड़े एकलव्य,
सड़को-चौराहों पर, हर दफ़्तर-द्वारों पर
जहरीले नारो को लिए खड़े एकलव्य,
धनुधारी अर्जुन के हित-साधक सूचित हो।

डरे हुए लोग

वर्जित अँधियारों से डरे हुए लोग
हर उगते सूरज को नमते हर बार
टूटी दीवारों मे घिरी हुई भीड़
मुँह ढाँके ढूँढ रही आकाशी द्वार।

मधुवन के अधरो पर मरुथल की प्यास
अपने आकारो से डरे खड़े लोग,
बुझते अगारो से जले खड़े लोग,
जहरीले नारों से ढले खड़े लोग।

यज्ञ-अश्व नियमन की वल्गाएँ तोड़
आया है निर्वासित लव-कुश के पास
रामकथा कहता है रावण का वंश
या कोई बदलेगा आगत इतिहास ?

उत्तर, दायित्वो के कंधो पर डाल
प्रश्न-चिह्न खेतो मे बोते हैं लोग
युग के अपराधो को ढोते हैं लोग।
वनवासी सीता को रोते हैं लोग।

आदमी जल गया

मैं नहीं खाऊँगा देवता की कसम।
देवता मेरे ईमान को छल गया,
सच कहूँ, आज सौगंध शैतान की
आदमी फूल की गंध से जल गया।

आचरण से परे आदमी का धरम।
एक नकली किरन, रोशनी का भरम,
इस कदर चढ़ गया दिग्भ्रमो का नशा
हर इबादत अंधेरे में गुम हो गई।

कुछ सितारे बहुत टिमटिमाए मगर
जालसाजी भरे सूर्य ने डंस लिये
आदमी का अंधेरा घना हो चुका
रोशनी के पहरुए परेशान हैं।

हाथ घायल हुए अर्घ्य देते हुए
मंत्र जपते हुए होंट जलने लगे
जब फ़रिश्तों के मुंह से नकाबें हटीं
जानवर आदमी से बड़ा हो गया।

गुमशुदा की तलाश करो

आरती के दिये जल गये
देवता का पता ही नहीं,
वन्दना की ऋचा मौन है—
गुमशुदा की तलाश करो।

आदमी-आदमी अजनबी
हो गया आइने के लिये
जानवरों से भरी भीड़ में—
फिर खुदा की तलाश करो।

हम गुफा से चले चांद तक
स्वप्न के छोर को छू लिया
भूमि पर रक्त के बीज बो
फूल नभ मे निहारा किये।

हम लड़े तो हमारे लिये
देवता सारथी बन गये,
आदमी-आदमी बांट कर—
हम अमन को पुकारा किये।

आज भी ढो रही हर दिशा
एक बारूद-गंधी पवन।
मौत को जिन्दगी बांट दे—
उस हवा की तलाश करो।
गुमशुदा की तलाश करो।
फिर खुदा की तलाश करो।

आत्म-भोगी अहम्

रंग में, धर्म में, देश में
बँट रहा आज तक आदमी
रेख भूगोल पर खींच दी—
वो हमारे वतन हो गये।

खून आदम की औलाद का
मंत्र से पूत जल बन गया,
धर्म—जो प्रेम के गीत थे
आदमी का कफ़न हो गये।

नाप अपनी नहीं दूरियाँ
नापता चाँद को आदमी
और इंसान के फ़ासले
अजनबी-सी घुटन हो गये।

बँट गया नील-वर्णी गगन
बँट गई ये धरा श्यामला
और बारूद-गंधी पवन—
भोगते ही जनम हो गये।

आदमी ब्रह्म का अंश है,
आदमी देव का वंश है
ये विशेषण हमारे लिये—
आत्म-भोगी अहम् हो गये।

मेरे गीत वहीं किरणाते

जब-जब ईसा सूली चढते जब-जब गांधी गोली खाते
बलिदानो की ज्योति-शिखा को जब-जब 'लूथर किंग' जलाते
दीवारों मे भरे जहर को जब कोई शिव पी लेता है—
मेरी श्रद्धा वही जनमती, मेरे गीत वहीं उग आते !

अंधकार को मिली चुनौती जब-जब तिमिरावृता धरा को
ज्योति जला उजियारा बांटा, सचराचरा, परा-अपरा को
सूरज की उगती किरणों को जब कोई छल ढक लेता है—
मेरी कविता वही जनमती, मेरे गीत वही किरणाते !

ज्वालामुखी छिपाये बैठा गुमसुम धरती का गूंगापन,
मुझको लगता—कहर न ढा दे ये आकाशों का बहरापन !
जब कोई शोषण का रावण समता-सीता हर लेता है—
मेरी चिन्ता वही जनमती, मेरे गीत वही जल जाते !

कितने दिन तक सबर करेगा गाकर भूखे भजन गुपाला
जन-धरती पर लगा रहेगा धर्म-रंग-सरहद का ताला
इन्क़लाब के दरवाज़ों पर जब कोई दस्तक देता है
मेरी निष्ठा वही जनमती, मेरे गीत वही बल पाते।

ओ सफ़र के साथियो

ओ सफर के साथियो, तुम मुझे दुलार दो,
प्यार से पुकार दो, तो मैं तुम्हें बहार दूँ
ज़िन्दगी सँवार दूँ !

मैं समय का सारथी, काल-रथ को हाँकता
अनदिखे भविष्य को चेतना मे आँकता,
उस डगर को दूँ चरण जो युगों से रुद्ध है,
उस तिमिर को दूँ किरण ज्योति जिससे क्रुद्ध है,
जो कभी थकें नही, जो कहीं रुकें नही
युग-वधू की पालकी को मैं नये कहार दूँ !

ज़िन्दगी के यज्ञ को गीत का हविष्य दूँ
आदमी की जाति को मैं नया भविष्य दूँ
छू सके जो युग-प्रभात के प्रकाश के चरण —
आस्था की आरती को बाँट दूँ मैं वो किरण ।
एक बार मीड दो, अनन्त काल तक बजे
वो नवीन वीण दूँ, मैं वो नया सितार दूँ ।
मैं तुम्हें बहार दूँ ।

परिचित स्वर में मुझे पुकारो

मन तो मौजी बंजारा है, आदी है अनजान सफर का,
डेरा डाल जहाँ बैठेगा, सौदा होगा नई डगर का,
खिलती हुई बहारों के इस सौदागर के दरवाज़े पर—
दस्तक देना व्यर्थ रहेगा लुटी हुई पगली पतझारो !

स्वर तो पगला आवारा है, चाहे जितना भी मुखराओ,
ओ आवाज़ लगाने वालो, यों ही मत आवाज़ लगाओ,
छलने वाली अनजानी सी आवाज़ों पर आ न सकूँगा—
किसी पुराने, मन के बसिया, परिचित स्वर में मुझे पुकारो !

मन के पन्ने अनगिनती है, कोई काले, कोई कोरे
हार-खेत में डोल रहे हों जैसे गँवई-गाँव के छोरे,
कोरा कागद सूना रे साधो, जड़-चेतन का रंग-रोगन ले—
युग अपनी परछाईं देखे, ऐसी इक तसवीर उतारो !

जिन्दगी तेज़-धूप झुलसे तो

कितने आकार में कटी दुनिया
कितने साकार मे बँटी दुनिया,
आदमी-आदमी अकेला है,
तू निराकार बात करता है,
व्यर्थ बेवक्त बात करता है,
तू तो सपनों की बात करता है,
इस शहर मे सभी पराये हैं—
तू तो अपनों की बात करता है !

यो न आवाज दे अनागत को,
कौन खोलेगा द्वार स्वागत को,
जानते हैं यहाँ 'मयूख' सभी
तेरी आवारगी की आदत को
सारी दुनिया में घूमने वाले
तेरी आवाज़ के ये बंजारे
अपनी आवारगी की मस्ती में
चल रहे हैं बिना थके-हारे।

नागफनियो के घोर जंगल मे
तूने जन्नत के बाग देख लिए,
तूने शायद घने अँधेरों में
रोशनी के चिराग़ देख लिये,
इसलिए मुक्त यों विचरता है
झाड़-झखाड़ और खारों में।
अपने शब्दों के दूत भेज रहा—
हर शहर, हर गली, बाजारों में।

तेरे शब्दों की आँच से जलती
दूध-धोये समाज की चादर,
तू नक़ाबों को नोच लेता है
इसलिए कर दिया है शहर-बदर
अपने सपनों से पेट भर अपना
अपने ख्वाबों को पी के प्यास बुझा
जिन्दगी तेज़-धूप से झुलसे तो—
अपने सपनों को ओढ़कर सो जा।

जो कफ़न ओढ़कर सो गई कल्पना

कौन तोड़ेगा सीमाएँ अज्ञात की,
कौन आवाज़ देगा अनाहूत को,
और निस्सीम की यह कुँवारी दुल्हन
कौन वामन करेगा वरण धर चरण
एक निःशेष विस्तार को नापने—
चल पड़ेगी नियति की नटी विष-घटी
और निर्वंश सपने न सुन पाएँगे
काल के अनबजे नूपुरों का क्वणन
तो ठहर जाएगी सृष्टि की सर्जना
जो कफ़न ओढ़कर सो गई कल्पना।

विस्मरण वीतरागी न कह पाएगा
आवरण में ढकी कल्प के जो कथा
कर सकेंगी न परछाइयाँ काल के—
क़ाफ़िलों की चरण-छाप का अनुसरण
एक अव्यक्त-अज्ञात आकार को
कौन देगा अप्रत्यक्ष साकारता
सृष्टि की दृष्टि के अधबुने स्वप्न को
जो न दी कल्पना ने अयाचित शरण
तो बहक जाएगी दृष्टि की वन्दना
जो कफ़न ओढ़कर सो गई कल्पना।

किस डगर पर उमर की गगरिया ढुली
किस गली में पड़ी मौत की भाँवरें,
बीच बाज़ार कितने कबीरा लुटे
और माया ठगिनी भी ठगी रह गई।

इस अगम का पता, इस निगम का पता
जो नहीं कह सके कल्पना के अधर
तो भटकती रही बावरी वन्दना
साधना की कथा अनकही रह गई
तो भटक जाएगी व्यष्टि की वन्दना
जो कफ़न ओढकर सो गई कल्पना।

हाँ, समर्पण स्वयं दे गया अर्पणा,
छू इसे हो गई वन्दिता वन्दना
पथ बुहारा करी याचकी अर्चना
जिस डगर पर चला शब्द का सारथी
जो झुलाता रहा प्राण का पालना
हाँ वही दे गया कल्पना को जनम
इंगितों को अधर दे गई भावना
अन्यथा सर्जना सृष्टि को भार थी
तो ठहर जाएगी स्वप्न की सर्जना
जो कफ़न ओढ कर सो गई कल्पना।

हम (एक)

छाँव में बरगदों की खड़े राहज़न
हम खजूरों-तले तन झुलसते रहे।
कट रही ज़िन्दगी पंचमी पूजते
बीन बजती रही, नाग डँसते रहे।

सावनी-पनघटों को पुकारा मगर
द्वार पर आ गए मेघ आसाढ़ के,
जो बहा ले गई पीढ़ियों को कई
पेड़ अब तक खड़े हम उसी बाढ़ के,

स्वर हमारा हमेशा सलीबों-चढ़ा
यज्ञ की अग्नि में शब्द जलता रहा,
भोर बनकर उगा काल के भाल पर
किन्तु हर साँझ को सूर्य ढलता रहा।

रास आया न अमरित हमें दोस्तो
कठघरों में खड़े हम ज़हर पी रहे
रेशमी काशमीरी दुशाले नहीं—
आदमी की फटी चादरें सी रहे

हम उगे भोर का स्वप्न-संगीत हैं
तो ढले सूर्य का घोर संत्रास भी
हम जलन काल के कैक्टस-दंश की
तो मलय-गंध का मुग्ध आभास भी।

हम नहीं व्यक्ति, हम एक रफ़्तार हैं
हम नही जीत हैं हम नहीं हार हैं
हम नही हैं सफ़र हम नही हमसफ़र
हम भविष्यत् का केवल खुला द्वार हैं।

दूध-गंधी नही दांत इतिहास के
सर्प-दंशी रहे, काल को डंस रहे
पीढ़ियों के सपन आंख में आंज कर
हम इसी काल के द्वार पर बस रहे।

हम (दो)

कुछ तो गुस्ताख मौसम का अपराध था
कुछ गुनहगार हम भी रहे बन्धुवर,
हमको इल्ज़ाम-आरोप स्वीकार हैं—
आपके सब कहे-अनकहे बन्धुवर !

कुछ तो माहौल महफ़िल का बदनाम था
कुछ अनाचार हममे हुए बन्धुवर,
हमने सूरज को दीपक दिखाए नही—
आस्था के धरातल जिए बन्धुवर !

रोशनी की किरन आँख में आँज ली
चन्द सपने बुने फिर उन्हें जी लिया
जब अँधेरों ने भीतर से हमला किया—
चाँदनी को चषक में भरा पी लिया।

हमने अपनी गज़ल-गीत में कह दिया
जैसी दुनिया हमें ये दिखी बन्धुवर
काल के भाल पर दस्तखत कर दिये—
चश्मदीदा गवाही लिखी बन्धुवर !

स्वर समर्पित शिवम् सुन्दरम् को रहा
प्राण समिधा बने हैं हवन के लिये,
हम उचरते रहे 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'
एक ज्योतिर्जगत के सृजन के लिये।

हमको बेचा गया, हम खरीदे गये
ऊँची बोली लगी है खुली हाट में,
एक बनिया तराजू पे तोले गया
लोग तुलते रहे रंक-सम्राट में।

हम नहीं आज के, आगे-पीछे खड़े
जन्म-जन्मान्तर, कल्प-कल्पान्तर
अनगिनत जन्म जीकर चले आ रहे
अनजिये शेष कितने अभी बन्धुवर !

थक गये, रुक गये और फिर चल पड़े
पीढ़ियों के मुसाफिर रहे बन्धुवर !
आत्मा में अमरता का अमरित भरा
देह डँसते रहे अजदहे बन्धुवर !

कुछ तो आवागमन की कठिन राह थी
धार के साथ कुछ हम बहे बंधुवर !
कुछ जगत की कसौटी में ही खोट था
सारे इल्ज़ाम हमने सहे बन्धुवर !

हम (तीन)

वो और लोग है जिन्हें गैरों ने विष दिया,
हमको तो आस्तीन के सांपों ने डँस लिया।

हर सांस ज़िन्दगी की नीलकंठ बन गई,
हमने हवा के साथ में इतना ज़हर पिया।

हमको अँधेरी रात से कोई गिला नही,
हमसे सदैव सूर्य के बेटों ने छल किया।

अक्सर मिली जो रोशनी इस तौर पर मिली—
जैसे किसी मज़ार पे जलता हुआ दिया।

वे देवता के द्वार पे चन्दन घिसा किये
घूंघट के पट खुले नही कैसे मिले पिया?

ये क्या हुआ जो राम को बनवास मिल गया।
सोना-हिरन ने आन के फिर से छली सिया।

हम बेनकाब सामने आकर खड़े हुए
उठने लगी जहान की नज़रें सवालिया।

मित्रो 'मयूख' बज़्म में बदनाम हो गया
दुखती रगों को छेड़ के जब ज़ख्म को सिया।

शब्द का छद्म

न्याय की द्रौपदीय गुहारों पर
धर्मराजों ने मौन धारा है,
बोलना ही पड़ा है तो छल से
'कुंजरो वा नरो' उचारा है।

शब्द का छद्म काल को जीकर
संत के द्वार तक चला आया,
राजनीति की एक नागिन ने
शब्द को सर्प-दंश मारा है।

हर अजामिल ने पाप धोने को
शब्द को जालसाज कर डाला
शब्द जो आत्मा की आहट है,
शब्द जो ब्रह्म का इशारा है।

कौन पीढ़ी के फासले नापे
आज भी हात ये हमारा है
कुछ अँधेरों को रोशनी देने
सूर्य आकाश से उतारा है।

एक सुनहरे साँप ने हमसे कहा

राजपथ पर जब कभी जयघोष होता है।
आदमी फ़ुटपाथ का बेहोश होता है।

भीड़ भटके रास्तों पर दौड़ती,
जब सफ़र का रहनुमा खामोश होता है।

छल गई जिनको सवेरे की किरन
रात के छल पर उन्हें संतोष होता है।

एक सुनहरे साँप ने हमसे कहा,
आदमी के दांत मे विष-कोष होता है।

मील के पत्थर अनंकित मौन हैं,
हाँ यही इतिहास का आक्रोश होता है।

मंत्र जपते होंट जब जलने लगें,
ऋत्विजों के आचरण का दोष होता है।

हम उन्हें आवाज दें मिलकर 'मयूख'
साथ जिनके जोश के कुछ होश होता है।

कृष्ण रथ चलाता है

कबिरा चदरिया को धोकर सुखाता है,
उस घाट मेरा मन जाकर नहाता है।
जहरीली दुनिया का हर नाग नाचेगा
मेरा सँपेरा लो बीन बजाता है।
दूर के सितारे तो रोशनी नही देते
पास का अँधेरा ही रास्ता बताता है।
जगलों की पगडडी अब नही है संन्यासी
ज्ञान अब तो बुद्धों का राजपथ से आता है।
चीखती हैं तारीखें धर्म-ग्रन्थ रोते हैं
जब कोई मसीहों को सूलियाँ चढ़ाता है।
साथ जब जुल्मो का कोई द्रोण देता है
मोहग्रस्त अर्जुन का कृष्ण रथ चलाता है।
आहटें मिली होंगी फिर कही उजालो की
रात का जो सन्नाटा चौंक-चौंक जाता है।

बुत की ज़रूरत है

उतार लाओ किसी देवता का रथ फिर से
सनमकदे में किसी बुत की फिर ज़रूरत है।
तलाश जारी रहे फिर किसी मसीहा की
सलीबो-दार को एक सिर की फिर ज़रूरत है।
'कदम कुआँ' का महादेव विष न पी पाया
सिंदूर किसके लगे अब न कोई मूरत है?
जो तख्तो-ताज के वारिस बने हुए उनके
हरमकदों में सदा जश्न का महूरत है।
जो लोकतन्त्र की ढपली बजा के नाच रहे
बतायें कौन-सी ये धुन, ये कौन-सी गत है?
उगा रहे हैं वतन में जो भूख की फ़सलें
फ़रेब उनका निहायत ही ख़ूबसूरत है।
यहाँ गुलाब उगें, चन्दनी हवा महके
बताओ आलिमो, ऐसी भी कोई सूरत है?
नक़ाब नोचता रहता है तू फ़रिश्तों की
'मयूख' छोड़ इसे ये बहुत बुरी लत है।

आकाश ने कवि से कहा

आदमी जब पीढ़ियों के पाप ढोता है
वह सफ़ा इतिहास का अभिशाप होता है।
हर सलीबो-दार ने चूमा उसे
क़ौम की जो चादरों के दाग़ धोता है।
युद्ध जारी है हमारा साथियो
जब तलक फुटपाथ पर इन्सान सोता है।
एक दिन आकाश ने कवि से कहा—
कल्पना में क्यों मेरा विस्तार बोता है।
आदमी की हैसियत इतनी बनी
देवता के नाम रटता एक तोता है।
क्या कहें उस नाखुदा से ऐ 'मयूख'
कश्तियों को जो किनारे पर डुबोता है।

बड़ा बेचैन मौसम है

बड़ा बेचैन मौसम है दिशाएँ पुरख़तर होंगी
न जाने चादरें कितनी लहू से और तर होंगी।

बड़ा बीमार डूबा है समय की कोख में सूरज
अँधेरी रात को लगता अँधेरी ही सहर होंगी।

भविष्यत् के चरण की चाप में तूफ़ान के स्वर हैं
भयानक आँधियाँ शायद हमारी हमसफ़र होंगी।

बड़े ही कंसुरे सुर में गगन की बीन बजती है
धरा की नागिनें इससे न बेघ ज़ेरो-ज़बर होंगी।

समय का आसुरी रावण जो लछमन-रेखा लाँघेगा
तो मर्यादा की सीताएँ न बाहर हैं—न घर होंगी

तुला पर तोलना होगा हमें फिर धर्मराजों को
'नरो वा कुंजरो' की घोषणाएँ जब मुखर होंगी।

हमीं को तोड़ना होगा भरी महफ़िल का सन्नाटा
सभा में द्रौपदी की जब गुहारें बेअसर होंगी।

अभी सिंहासनों को भोगता वरदान दशरथ का
भरत को पादुकाएँ राम की फिर से नज़र होंगी।

लकीरें रोशनी की कुछ कलम से खींच दो यारो
हमारी ये ऋचाएँ पीढ़ियों की नामाबर होंगी।

चलो कुछ देर तो जीकर गुलों की ज़िन्दगी छू लें
सलीबों की कतारें फिर हमारी मुन्तज़िर होंगी।

'मयूख' अपने नशेमन को ज़रा तुम बाखबर कर दो
न जाने बिजलियाँ कितनी गगन की पुरअसर होंगी।

गज़ल

ये सच न हो तो ऐ मुसिफ़ो तुम कलम हमारी ज़बान कर दो
ये रहबरों की ही साज़िशें हैं जो लुट रहे कारवाँ सफ़र में।

मनीषियो, पढ़ के याद कर लो—लिखी है दीवार पर इबारत
चराग जो भी जलाये हमने अगिन लगी है उन्ही से घर में।

ये धर्म-ग्रन्थों ने हमसे बोला—करो मुहब्बत खुदा के बन्दो
नज़र ये ऐसी लगी है किसकी भरी जो नफ़रत नजर-नज़र में।

पुजारियो जा के देख आओ—कहीं तुम्हारा खुदा न हो ये
पड़ी हुई है न जाने कब से मढ़ी हुई लाश मुर्दाघर में।

धुआँ-धुआँ आदमी हुआ है, तपिश से तहज़ीब जल रही है
कहाँ गईं वो हवाएँ ठंडी कभी मिली थी जो रहगुज़र में।

गुफा से चल कर, गगन को छूकर ये कौन से युग में आ गये हम
हवा में बारूद-गंध फैली भरा हुआ खून हर डगर में,

सदी की हर त्रासदी को झेला हमारी हिम्मत की दाद तो दो
हमारे संकल्प-सूर्य ने हर निशा को बदला है फिर सहर में।

जो तिश्ना होंटो की प्यास छू ले मोहब्बतों का उजास बाँटे
गज़ल तो आखिर गज़ल है यारो गज़ल कहो तुम किसी बहर में।

हमारे जाने के बाद यारो ज़माना पूछेगा तुमसे आकर
वो एक शायर कहाँ गया है कभी जो रहता था इस नगर में।

जहाँ भी देखो वही मिलेगा मेरे सनम का स्वरूप ऐसा
अनेक रस्ते अभेद मंज़िल, झुकाओ सर को किसी भी दर में।

दिशा-दिशा ने जिसे दुलारा, किरण ने उपनाम दे पुकारा
वही बेचारा 'मयूख' गुमनाम हो गया अपने ही शहर में।

जाने कहाँ खो गई

मेरी कविता का बंजारा,
सारा देश खोजकर हारा,
जाने कहाँ खो गई भारत माँ की छवि अभिराम !
जाने कहाँ खो गई !!

पूरब देखा, पच्छिम देखा
सबके मन पर खिंची है रेखा,
पीढ़ी दर पीढ़ी हम लिखते
अपने महापतन का लेखा,
युग-पुरुषों की भीड़ लगी है
किसको करें प्रणाम !
जाने कहाँ खो गई···

सब जग राम-सियामय जानो
कहें हमारे ज्ञानी-ध्यानी
पन सवर्ण के कुएँ-पोखरे
नहीं अछूत भरेगा पानी
झूठे बेर नही खायेंगे
अब शबरी के राम !

सम्प्रदाय को लेकर दंगा,
धर्म वहीं हो जाता नंगा,
क्षमा न देंगे काबा-काशी
पाप नहीं धोएगी गंगा।
क़ौमी यकजहती हो जाती
सरे आम नीलाम !

कितनी दीवारों को ढाला
ये उत्तर ये दक्खिन वाला
ये पंजाबी ये मदरासी
ये उर्दू ये हिन्दी वाला
जातिवाद से जला बिहारी
सुलग रहा आसाम !

फैली कुटिल विदेशी माया,
घायल हुई देश की काया
दरवाज़ों पर मँडराती है
युद्धखोर गिद्धों की छाया।
काश्मीर की केसर-क्यारी
सुलग रही अविराम।

जग में नाम किया करती है,
सीना तान जिया करती है,
संकल्पों का भर-भर प्याला
जिन्दा कौम पिया करती है।

स्वर्ण-अक्षरों में लिख देती
मातृभूमि का नाम।
जाने कहाँ खो गई
भारत माँ की छवि अभिराम
जाने कहाँ खो गई ?

तीन युद्ध-कविताएँ

आहत 'होता'
[घायल पुरोहित]

कंधों पर लदा हुआ अंधा, बूढ़ा अतीत,
वर्तमान का 'श्रवण' घूम रहा तीर्थ-तीर्थ,
राह-घाट, हाट-बाट, इस पथ से उस पथ तक
मृत्यु-दूत दशरथ तक
आशंकित छू रहे भविष्य-दंश से
आदि वंश से ! आदि वंश से !!

हर भ्रम की आहट पर रच पड़ते अश्वमेध,
धोका खा जाते हैं दशरथ के शब्द-भेद,
मर जाता वर्तमान, आहत होता भविष्य
रक्तिम समिधा-हविष्य
आतंकित मानव-मन युद्ध-दंश से !
आदि वंश से !
आदि वंश से !!

संस्कृति की टकराहट बन जाती 'दाशराज्ञ'[1]
'शंबर' के दुर्गों का भेदन हो जाता है
मतभेदी जन-दर्शन, कर्म और भोग-पथी
देवासुर युद्धव्रती ।
संत्रासित संस्कृतियाँ कर्म-अंश से !
भोग-वंश से !
आदि वंश से !
आदि वंश से !!

---

1. दाशराज्ञ—आर्यनरेश दिवोदास और असुर-राज शंबर के बीच चलने वाले चालीस वर्षीय वेदकालीन युद्ध ।

युद्ध

मैंने पढ़े हैं
अनस्तित्वी द्वारों पर अंकित
वर्जनीय निषेध !
देखे हैं—
अनिर्दिष्ट संधानों को गमित
दिग्भ्रमित इंगित !
सुने हैं
अर्थहीन अभिव्यक्ति की समर्थ
व्याख्याओं के शोर !
सूर्य के रश्मि-रथ की ओर उन्मुख
अँधेरे अभियानों के ज़ोर
सबसे अवगत !!

दिशाओं पर घटाटोप
'ईव' की कोख का अंधकार
अपारदर्शी रेखाओं में क़ैद
'आदम' के गोरे-काले बेटे ।
धर्म का स्थानापन्न ख़ूनी देवता राष्ट्र,
स्वर्ण का पर्याय रक्त,
इन सबके पीछे युद्ध !
बाँझ संभावनाओं का नपुंसक व्यभिचार—
युद्ध !!

शून्य के सीमांकन को संचरणरत उपग्रह,
ज्ञान की आन्तिक उपलब्धि में व्यक्त विज्ञान
इन सबके पीछे युद्ध !

स्थितियों का नकारात्मक निर्देश
युद्ध !

मैंने देखा है अपारदर्शी दीवारों के पार
सूर्य के रश्मि-रथ से कुचला मरण-मुखी तम,
स्वर्ण का पर्याय श्रम,
राष्ट्र के स्थानापन्न जन,
रेखाओं को तोड़ते 'मनु' के गोरे-काले बेटे !

शास्ताओ, सुनो, प्रबुद्ध कलमों ने
बारूद से बगावत करने वाली स्याही
भर ली है
रेखाओं की क़ैद से मुक्त
वर्जित द्वार विलुप्त
सुनो शास्ताओ, मरघटी सन्नाटों को चीरती
नये स्वप्न के जन्म की आहट
प्रतीक्षारत हैं
अनुपलब्ध विजय के अघोषित तूर्य !
प्रतीक्षारत हैं।

युद्ध थोपे जाने पर (एक)

मेरे गीतों की बारात यूँ जायगी—
मेरे गीतों का दूल्हा बड़ा बेशरम
देखता काल की घूँघटें खोलकर
मेरे गीतों का दूल्हा तो वाचाल है
जो भविष्यत्-वधू से रहा बोलकर।
भोर के भाल से चोर सिन्दूर को
सांझ की सांवरी मांग मे भर दिया
मेरे गीतों का दूल्हा बड़ा चोर है
खूब सपने चुरा, सृष्टि को वर दिया
बांटता फिर रहा मुक्त वरदान को
जानता है कमी कुछ नहीं आएगी
कल्पना के पगों सर्जना-द्वार पर
मेरे गीतों की बारात यूँ जायगी।

फिर कोई 'देव' की 'बाण' की कामिनी
चल पड़ेगी छिपी नैश-अभिसार को,
रूप में सोलहों राग-शृंगार भर
ठोकरों से खिलायेगी कचनार को
फिर हलाहल भरे श्याम-रतनार से—
लोचनों मे छिपाए हुए बाण से—
कौन घायल हुआ, कौन लेखा लिखे ?
रूठ जाये कहीं मानिनी मान से।
ज्यों पुकारे कोई मुग्ध-सी नायिका
यों 'बिहारी' को आवाज दी जायेगी
सर्जना के पगों याचना-द्वार पर
मेरे गीतों की बारात यूँ जायगी !

फिर लुटेगी कोई सूर की गूजरी
फिर कोई कान्ह माखन चुरा जायगा
और मीरा बिकेगी बिना मोल ही
सांवरा रूप यों जुल्म ढा जायगा
मेरे गीतों की बारात के साथ में
एक छोरी अहीरों की गाती चली
और छछिया भरी छाछ के मोल पर
नाच नटवर को नटखट नचाती चली,
चुप रहो, आज 'रसखान' के कान में
अनकही बात कोई कही जायगी
याचना के पगों सर्जना-द्वार पर
मेरे गीतों की बारात यूं जायगी।

कौन फूंकेगा घर साथ मेरे चले
फिर कबीरा पुकारेगा बाजार में
ज्ञान-दर्शन बुनेगा चतुर बुनकरा
सूत के एक बारीक से तार मे
ओढने को वधू के लिये प्यार से
झीनी-बीनी चुनरिया बुनी जायगी
भाई साधो सुनो, बात चौपाल मे
ये कही जायगी—ये सुनी जायगी
और डोली उठाने अजब ठाठ से
फिर कहारों को आवाज दी जायगी
अर्चना के पगों सर्जना-द्वार पर
मेरे गीतों की बारात यूं जायगी।

फिर कोई कूबड़ी मंथरा फूल के
बाग में आग सुलगा चली जायगी
और दसमाथ के झूठ के हाथ से
फिर सचाई की सीता छली जायगी
फिर किसी व्यास की लेखनी के तले
ले सुदर्शन कन्हैया चला आयगा

मोह के पाश को काटने के लिये
ज्ञान-गीता का दीपक जला जायगा
इस नये आइने में शकल देखकर
खूब अपना-पराया परख जायगी
चेतना के पगों वर्जना-द्वार पर
मेरे गीतों की बारात यूँ जायगी।

लो मयूखें निकाले प्रलय-भानु सी
साथ 'भूषण' चला मेरी बारात में
सुप्त शंकर जगाने उठी कल्पना
बिजलियाँ भर गईं शब्द के गात में
सरहदों पर खड़े शत्रु से बोल दो—
'गोरा-बादल' लिये 'जायसी' आयेगा
फिर नई एक 'रासो' रची जायगी
'चन्द' फिर शब्द पर तीर लगवायेगा
मेरे गीतों के दूल्हे को वैरी के सर
काटकर आज सौगात दी जायगी
साधना के पगों वन्दना-द्वार पर
मेरे गीतों की बारात यूँ जायगी।

मेघ को मैं न भेजूंगा संदेश ले
यक्षिणी से कहो दाब ले पीर को
भेज दूंगा शहीदों की वो टोलियाँ
जो बदल दें हिमालय की तकदीर को
मेरे गीतों की बारात के साथ में
रुद्र-भैरव चला है बराती बना
आज डमरू बजा ताण्डवी ताल पर
मेरे गीतों में गूँजी नई गर्जना
शत्रु के शीश के तोरणों को गिरा
सरहदों पर मुलाकात की जायगी
साधना के पगों वन्दना-द्वार पर
मेरे गीतों की बारात यूँ जायगी।

युद्ध थोपे जाने पर (दो)

अर्सा गुज़रा जब गुलाब का
कफ़न ओढ़कर भँवरा सोया,
युग बीते जब मन का छैला
प्रेयसि की अलकों में खोया,
नहीं नहायेगी चांदनियाँ
निर्वसना नीले अम्बर में
राह न देखे कोई राधा
साँवरिया की किसी डगर से
मत झनकारे किसी उर्वशी की
पायल के घायल से स्वर
कवि कुछ ऐसी तान सुना दे
गूँज उठे रणभेरी घर-घर।

कालिय-मर्दन करे कन्हैया
शत्रु-शिविर के रण-प्राङ्गण में
दुश्मन के कंकाल बिछा दे
सीमा-अंचल के कण-कण में
भंग न कर पायेगी तप को
आज मेनका पंचशील की
फ़ौलादी गोलियाँ बनेंगी
अब लोहे की कील-कील की
खेतों में बारूद उगाने
निकल पड़ा है मेरा हलधर।
कवि कुछ ऐसी तान सुना दे
गूँज उठे रणभेरी घर-घर।

पनघट की राधा के नूपुर
रणभेरी में परिवर्तित कर
वृन्दावन की वंशी के स्वर
शिव-शंकर के डमरू में भर
आज रुद्र के आवाहन का
रास रचाते ग्वाल-बाल-जन
भृंग दे रहे ताल-ताण्डवी
प्रलयंकर का खुला त्रिलोचन
डिम-डिम-डिम-डिम डमरू वाजे
नाच रहा रे जन-गण-शंकर।
कवि कुछ ऐसी तान सुना दे
गूँज उठे रणभेरी घर-घर।

इन हमलावर कबूतरों को
दाना चुगकर मत उड़ने दे,
विश्व-शाति की परिभाषा मे
कायरता को मत जुड़ने दे।
तेरे स्वर पर समाधियों से
निकल पड़ेंगे 'टीपू', 'नाना'
निकलेगी झांसी की रानी
निकलेगी 'रजिया सुल्ताना'
हत्यारे हमलावर से भर दे
काली का खाली खप्पर—
कवि कुछ ऐसी तान सुना दे
गूँज उठे रणभेरी घर-घर।

पृथ्वीराज लड़ेगा लेकिन
साथ-साथ कवि चन्द लड़ेगा,
रावण-वध की हर चौपाई
'भूषण' का हर छन्द लड़ेगा,
हल्दी घाटी से उड़-उड कर
इतिहासों की धूल लड़ेगी,

अर्जुन का हर मोह लड़ेगा
दुर्योधन की भूल लड़ेगी,
फिर दे देगी हाड़ी रानी
अमर निशानी शीश काटकर
कवि कुछ ऐसी तान सुना दे
गूँज उठे रणभेरी घर-घर।

कवि तेरे शब्दों की स्याही से
इतिहास लिखे जाते हैं
कवि तेरे स्वर पर बलि होने
लाखों शीश चले आते हैं
स्वर्ण-लेखनी से लिख देना
रे कवि उन वीरो का 'साका'
जो सीमा पर गये बाँकुरे
दूध चुकाने भारत माँ का
हमलावर हत होगा निश्चित
है यह तेरा वरदानी स्वर
कवि कुछ ऐसी तान सुना दे
गूँज उठे रणभेरी घर-घर।

सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् का
उद्घोष करेगी कवि की वाणी
किन्तु शान्ति की परिभाषा के
दोष हरेगी कवि की वाणी
जन-जनार्दन के हाथों में
पहिले देगी चक्र-सुदर्शन
फिर अशोक के धर्म-चक्र का
लिख पायेगी जीवन-दर्शन।
रख विश्वास अडिग रे साथी
'सत्यमेव जयते' के स्वर पर—
कवि कुछ ऐसी तान सुना दे
गूँज उठे रणभेरी घर-घर।

जन-विनाश पर बजा न पाये
बाँसुरिया अब कोई 'नीरो'
गंध न फैले बारूदों की
पहरा दो उन्चास समीरो,
अणु-मद के उन्मत्त प्रमादो
तोड़ो तलवारों-ढालों को,
मैंने स्वर की सीमाओं में
बाँध लिया है दिग्पालों को।
किन्तु असुर यदि भंग करें तप
तो पहरा दें राम धनुर्धर—
कवि कुछ ऐसी तान सुना दे
गूँज उठे रणभेरी घर-घर।

कवि की वाणी सरस्वती है
तो चामुण्ड भवानी भी है,
ब्रज के नटनागर के गीत लिखे
तो गीता—गानी भी है
भस्म करेगी वर लेकर
छल करने वाले भस्मासुर को
नये नीति-निर्देशन देगी
राजनीति के नये विदुर को
पाञ्चजन्य के तुमुल घोष से
मुखरित होगा अवनी-अम्बर,
कवि कुछ ऐसी तान सुना दे
गूँज उठे रणभेरी घर-घर।

हमलावर पड़ोसी को खुला ख़त

कल तक तुम भी इस मिट्टी की
मां-जैसी गोदी में खेले,
कल तक तुम मेरे अपने थे।
इस नाते ये ख़त लिखता हूँ
तहज़ीब की गंगा-जमुना से
तुम प्यार नहीं क्यों कर पाये
मैं तवारीख़ की स्याही से
इस ख़त की इबारत लिखता हूँ।

देखो ये ताजमहल, जैसे
साकार काव्य, रंगीन ग़ज़ल
संस्कृति के संगम का प्रतीक
इसके ऊपर जो बना कमल
इस मुल्क के मंदिर भी
मस्जिद की मीनारों को दुलराते
अजमेर की मस्जिद जैन शिल्प का
रखती है आधार सबल।

इन्सान तो क्या, पत्थर के भी
दिल साथ धड़कते आये हैं
तहज़ीब के साज़ों पर हमने
मिल-जुल के तराने गाये हैं।
अकबर के जो कंधों पर चलती
डोले में जोधारानी थी

रनिवास में बाजीराओं के
खातून मुगल 'मस्तानी' थी।

सदियों की कोशिश से हमने
रूहानी रिश्ते जोड़े हैं,
क़ौमी यकजहती की जानिब
मुश्किल से काफ़िले मोड़े हैं
इस धरती पर तुमने अपनी
तोपों का मुंह जो मोड़ा है
हाथों मे बँधा हुमायूं के
राखी का डोरा तोड़ा है।

मेरे नानक की बोली को
हाँ तुमने गोली मारी है
मेरे कबीर की साखी को
तुमने गन्दी गाली दी है
अजमेरी ख्वाजा चिश्ती का
पैग़ामे मुहब्बत ठुकराया
मेरे 'रहीम' को कुचला है
'रसखान' को विष-प्याली दी है।

तुम आज जिहादी नारों से
जो अपनी फिज़ा है
मजहब के नशे पिलाते हो।
क्या है, मैं
तुम

तुम अरे वही औरंगजेब
हत्यारे दारा-सरमद के
दिल्ली का क़त्ले-आम किया
तुम वही दरिन्दे 'दुर्रानी'
पैग़म्बर का कलमा पढ़ने वाले
कितने सर काटे थे ?
कुछ गिनती है, या भूल गये
अपनी वह हरकत शैतानी,

स्पेन के 'इन्क्वीज़ीशन' से
ईमान के दावेदारों तक
मज़हब के नाम मिले धोके
इतिहास बताया करता है
इस धर्म की ठेकेदारी के
हर एक अंधेरे कोने में
नापाक इरादों को लेकर
शैतान समाया करता है।

ये कल ही की तो बात कि तुमने
बाँटा था इन्सानों को
मज़हब के नारे लगा-लगा
पगलाया था दीवानों को
ये माँ जैसी पावन मिट्टी
मासूम लहू से सींची थी
सहजीवों के क़ातिल तुमने
दीवार दिलों में खींची थी।

इन्सान के अच्छे होने का
विश्वास लिये जो जीता था
औरों को अमरित पिला-पिला
खुद ज़हर के प्याले पीता था
जिसकी नज़रों में तुम अब भी
अपने थे, कोई ग़ैर नहीं

वो अमन का पैग़म्बर नेहरू
रखता था तुमसे वैर नहीं

जिसने चाहा—हम भले पड़ोसी सा
रख पायें स्नेह-संग
दोनों भाई-भाई मिलजुल
धरती से मिटायें जुल्म-जंग
जो सबसे ऊँचा गिनता था
भाईचारे के रिश्ते को
तुमने घूँसे दिखलाये थे
मेरे उस नेक फ़रिश्ते को।

तुम भेद बढ़ाने की चाहे
कितनी ही गन्दी चाल चलो
पर मेरी गंगा का पानी
नफ़रत की फ़सल न सींचेगा
हम अमनपरस्ती-वतन परस्ती
के दीवानेपरवाने
आने वाला इतिहास यही
तसवीर हमारी खींचेगा

नफ़रत फैलाने वाले तुम
तहज़ीबों के क़ातिल सुन लो
हम हिन्दू नहीं, नहीं मुस्लिम,
सिख नहीं, नहीं हैं क्रिस्तानी।
पंजाब नहीं, बंगाल नहीं
गुजरात नहीं मदरास नहीं
सब एक हिमालय के बेटे
हम सारे हैं हिन्दुस्तानी।

तुम कल तक मेरे अपने थे
इस नाते ये खत लिखता हूँ
वरना मेरी सीमाओं के
रखवाले तो रणबाँके हैं
जितना जल्दी हो दूर करो
मेरे घर की दीवारों से
ये जो नापाक लुटेरों के
शैतानी चेहरे झाँके हैं।

वो अमन का पैग़म्बर नेहरू
रखता था तुमसे वैर नही

जिसने चाहा—हम भले पड़ोसी सा
रख पायें स्नेह-संग
दोनों भाई-भाई मिलजुल
धरती से मिटायें ज़ुल्म-जंग
जो सबसे ऊँचा गिनता था
भाईचारे के रिश्ते को
तुमने घूँसे दिखलाये थे
मेरे उस नेक फ़रिश्ते को।

तुम भेद बढाने की चाहे
कितनी ही गन्दी चाल चलो
पर मेरी गंगा का पानी
नफ़रत की फ़सल न सींचेगा
हम अमनपरस्ती-वतन परस्ती
के दीवानेपरवाने
आने वाला इतिहास यही
तसवीर हमारी खींचेगा

नफ़रत फैलाने वाले तुम
तहज़ीबों के क़ातिल सुन लो
हम हिन्दू नही, नही मुस्लिम,
सिख नही, नही हैं क्रिस्तानी।
पंजाब नहीं, बंगाल नही
गुजरात नहीं मदरास नही
सब एक हिमालय के बेटे
हम सारे हैं हिन्दुस्तानी।

तुम कल तक मेरे अपने थे
इस नाते ये ख़त लिखता हूँ
वरना मेरी सीमाओं के
रखवाले तो रणबाँके हैं
जितना जल्दी हो दूर करो
मेरे घर की दीवारों से
ये जो नापाक लुटेरों के
शैतानी चेहरे झाँके हैं।

मेरे शहर की नदी
[रन्ति देवस्य कीर्तिम् चर्मण्वती (चम्बल) मेघदूत]

ओ मेरे शहर की नदी चम्बल
तेरा जल-मन पिघल गया होगा—
यक्ष की पीर से भरा बादल
जब इधर से निकल गया होगा।
ओ मेरे शहर की नदी चम्बल !

तेरे तट की 'अधर-शिला' शायद
दूत-सम्मान में झुकी होगी,
और सजदा क़ुबूल करने को
मेघ से नीर ढल गया होगा।
ओ मेरे शहर की नदी चम्बल !
तेरी वन-वीथियों में पग दाबे
कोई अभिसारिका चली होगी,
मेंहदिया पैर छू दिये होंगे
और कचनार खिल गया होगा।
ओ मेरे शहर की नदी चम्बल !

तेरे तट की महल-अटारी में
कोई सुख-सेज सज रही होगी
फूल को नींद आ रही होगी
और भँवरा मचल गया होगा।
ओ मेरे शहर की नदी चम्बल !

मेघ के नाद से डरी तरुणी
कंत के कंठ से लगी होगी
होंट से होंट मिल गये होगे
और फिर जाम ढल गया होगा !

मेघ रिमझिम बरस रहा होगा,
कोई भुज-पाश कस रहा होगा
और फिर नींद खुल गई होगी
यों कोई ख्वाब छल गया होगा !

तेरी लहरों की गोपियाँ चम्बल
जाके जमुना में जब मिली होंगी
मोर का पंख बन गई होंगी
गोप का गर्व गल गया होगा !
ओ मेरे शहर की नदी चम्बल !!

तलाश

•

लोग पत्थर तलाशने निकले,
हम तेरा दर तलाशने निकले।
सारा जग ही सगा लगा यारो
अपना जो घर तलाशने निकले।
जन्म के दूसरे कनारे को
ज़िन्दगी भर तलाशने निकले।
बन्द अलमारियों के पोथों में
लोग रहबर तलाशने निकले।
हम तो दानिशवरों की दुनिया मे
सरफिरे सर तलाशने निकले
जो हमें रास्ते में छोड़ गये
वो ही अक्सर तलाशने निकले।
वो ज़मीं छोड़कर खलाओं में
अपना ही डर तलाशने निकले
जो कबूतर उन्होंने मारा है
उसके ही पर तलाशने निकले।
पीढ़ियों ने जो प्रश्न पूछे हैं
उनके उत्तर तलाशने निकले।
ये धरा तो 'मयूख' छोटी थी
लोग अम्बर तलाशने निकले
हम तो दो गज़ ज़मीन के भीतर
अपना विस्तर तलाशने निकले।

गाँव लौट जाने दे (गीत)

ऊब गया घुटन भरे नगरी संत्रास से
शहरी वेगानेपन गाँव लौट जाने दे !
गाँव लौट जाने दे !

तूने जो जल डाला सोने की झारी से,
झुलस गई माटी की मोह-सनी अँजुरियाँ,
गाँव के किनारे के पोखर के मटमैले
पानी मे धो लूंगा घायल हथेलियाँ,
नकली मुस्कानों का बोझ बड़ा भारी है—
थके-थके पाँवों से गाँव लौट जाने दे !

मौसम फगुनाया है फूले होंगे पलाश,
बिल्लौरी प्याली से नाजुक अफयून-फूल,
सारस की कुरलाहट भर जाती होगी फिर
अनगौनी राधा की काया में विरह-शूल,
शायद ये सब मुझको आवाज़ें देते है—
प्रीति भरे पाँवों से गाँव लौट जाने दे !

रास भरी कनबातो की होगी कान मे
पूनम के चन्दा ने नदिया की रेत से,
बोल गई होगी कुछ पगली मुँहजोर हवा
अलसी के नील-फूल, सरसों के खेत से
यादों की पाती जो बचपन ने भेजी है—
बौरो अमराई के नाम लौट जाने दे !

एक बात कहनी है बचपन के गांव से,
गलियों में खेल रहे बच्चों के पांव से,
तपती दुपहरिया में खेला था गिल्लियां—
एक बात कहनी है बरगद की छांव से,

चमकीली सड़कों की धूप बड़ी तेज है
धूल भरे पांवों से गांव लौट जाने दे।
शहरी बेगानेपन, गांव लौट जाने दे!

वीतरागी गीत

भँवरों को गुंजारें देता,
अनकूती मनुहारें देता,
सुमनों की सौरभ-पायल को
अनमुखरित झनकारें देता,
जो वसंत का थका बटोही मेरे द्वार चला आये तो—
यहाँ न कोई शिव बैठा है, यहाँ न कोई शर साधेगा।

धरती को मुस्कान बाँटता,
हरियाली को दान बाँटता,
और तड़ित-ताण्डव के स्वर में
दिग्पालों को गान बाँटता,
जो घुमड़ाते घन ले सावन मेरे द्वार चला आये तो—
गरजे चाहे गाये रिमझिम यहाँ न कोई स्वर बाँधेगा !

राका का अधिकार नाप कर,
हर चकोर का प्यार नाप कर,
और किरण के वामन-पग से—
अंबर का विस्तार नाप कर
जो कोई पूनम का चन्दा मेरे द्वार चला आये तो—
राहु ग्रसे या रास रचाये, यहाँ न कोई पहरा देगा !

अलक अमावस को दुलराता,
दिशा, निशा, भू, नभ पर छाता,
और अवनि के प्रच्छद्-पट को
तिमिर-तूलिका से रँग जाता,
जो कोई तम का आराधक मेरे द्वार चला आये तो—
यहाँ न कोई दीप बुझेगा, यहाँ न कोई उजियारेगा।

निशि-गंधा की कुसुमित लतिका,
लिये संदेशा अनहद रति का,
ले, अनंग के अंगराग सी
मलय-सुलभ सौगन्धिक-पुटिका,
जो कोई बौराया फागुन मेरे द्वार चला आये तो—
वंशी-वट पर लिये मुरलिका यहाँ न कोई स्वर साधेगा !

नहीं लरजती किसी मदन-वन
ललित लवंग-लता परिशीलन,
कोई नयन नहीं पाता है
अमिय हलाहल का सम्बोधन,
जो कोई प्रिय का मनभावन मेरे द्वार चला आये तो—
यहाँ न कोई प्यार करेगा, यहाँ न कोई दुतकारेगा !

खड़ी यहाँ वन्दना वन्दिता,
और अर्पणा स्वयं अर्पिता,
पाप-शाप-वरदान-विताड़ित
मुक्त विचरती वीतरागता,
जो कोई पूजा का पाहन मेरे द्वार चला आये तो
यहाँ न कोई ठोकर देगा, यहाँ न कोई आराधेगा !

अध्यात्म गीत

चँदनाया गीत

पोखर के पीपल चँदनाई छाया मे
खेतों के कान्हा का अलगोजा बाजा है,
दूर कहीं सारस का जोड़ा कुरलाया है
गीत कोई सरगम के घूँघट में लजा है,
पीर भरी अनगौनी राधा की काया में !
पोखर के पीपल की चँदनाई छाया में !

कलियों ने सुन ली है फूलों की कनबाती;
हर भँवरा बागी है, हर तितली हरजाई,
सौरभ की साँसों पर मौसम का पहरा है,
फागुन के घर जाकर पी आई पुरवाई !
मधुऋतु की पंजनियाँ झन-झन-झन झननाती !
कलियों ने सुन ली है फूलों की कनबाती !!

तुम्हारा नाम

शरद की चाँदनी शायद तुम्हारी देह छू आई,
तुम्हारी साँस का सौरभ चुरा लाई है पुरवाई,
मलय की गंध ने आकर तुम्हारा नाम टेरा है,
मुझे लगता मेरे हमदम यही उपनाम तेरा है,

तुम्हें आवाज दी हमने भँवर की गुनगुनाहट से
जगाया है तुम्हारी याद को अपनों की आहट से,
तुम्हें आवाज देने का हमारा ढंग न्यारा है—
कली के बंद होठों के तबस्सुम[1] से पुकारा है।

तुम्हें आवाज दी हमने चमन में, कोहसारों[2] में,
प्रणय की पीर में पागल पपीहे की पुकारों में,
शरद के चाँद ने जब-जब मदन को बान मारा है—
नशा-डूबी निशा के नाम से तुमको पुकारा है।

तुम्हें आवाज देते हैं ये जंगल देवदारों के,
चले आओ, बुलाते हैं तरन्नुम[3] आबशारों[4] के,
पहाड़ों की ढलानों पर उतरते रात के साये—
किसी यादों की वादी[5] से तुम्हारी याद ले आये।

तुम्हारा नाम शहनाई, तुम्हारा नाम पुरवाई,
तुम्हारा नाम जन्नत है, गजल है, गीत-रुबाई,
तुम्हारा नाम राधा है, तुम्हारा नाम वृन्दावन—
तुम्हारा नाम गुजरी है, तुम्हारा नाम वंशी-धुन।

---

1. तबस्सुम = मुस्कान, 2. कोहसार = जंगल, 3. तरन्नुम = गुनगुनाहट, 4. आबशार = झरना, 5. वादी = पहाड़ी ढलान।

तुम्हारे नाम का ही नाद मेरे छन्द में बोला,
हृदय के रंध्र में बोला, मलय की गंध में बोला,
सभी जड़ और चेतन के जगत के द्वन्द में बोला,
तुम्हारे और मेरे बीच के सम्बन्ध में बोला—

चले आओ तुम्हें हर नाम से हमने बुलाया है,
कभी शृंगार गाया है, कभी अनहद सुनाया है,
यही इश्क़-हक़ीक़ी[1] है, यही इश्क-मजाज़ी[2] है,
हमारी भावनाओं की यही दस्तूर[3]-साज़ी है,

सजे जो फूल-काँटों पर तुम्हारा नाम शबनम है,
तुम्ही हो 'तत्त्वमसि' मेरे, तुम्हारा नाम 'सोऽहम्' है,
तुम्हारा नाम जब टेरा जगत-पतझारमारों ने
वहीं पर पालकी रख दी बहारों की कहारों ने।

---

1. हकीकी = आध्यात्मिक, 2. मजाजी = लौकिक, 3. दस्तूर = नियम।

दर्शन गीत

इस महफ़िल में तू तो केवल नाट्य-मंच का आगन्तुक है,
अपने अभिनय की चादरिया ज्यों की त्यों धर दे, क्या तुक है ?
पहिन-ओढ़ कर मैली कर फिर मन के जल मे धो ले रे बन्दे !
मन के जल मे धोले रे !!

नही अकिंचन, कंचन-कण है,
तू प्रज्ञाधारी चेतन है,
महासृष्टि के प्रणव-नाद का—
तू तो केवल एक क्वणन है,
नटनागर के महारास में कितने घुंघरू बोले रे बन्दे !
कितने घुंघरू बोले रे !!

नई दुल्हनिया आई रे साधो
सजी उमर के मोती जड़कर,
काया की असवारी चलती
जनम-मरण के घोड़े चढ़कर,
प्रेम-पियारा प्रियतम आकर घूंघट के पट खोले रे बन्दे !
घूंघट के पट खोले रे !!

द्वैत वही, अद्वैत वही है,
वही सगुण है, वही निरगुनियाँ,
सबहि नचावैं एक गुसैयाँ
बाज रही उसकी पेंजनियाँ,
अलख निरंजन, अल्लाहु अकबर, बोल-बोल बमभोले रे बन्दे !
बोल-बोल बमभोले रे !!

निर्धन-धनी, रंक और राजा,
इस धरती पर नंगा आया,
एक समान रची सर्जक ने
पंच तत्त्व से सबकी काया,
बाँट लिया क्यों तूने खुद को काले, पीले, धोले रे बन्दे !
काले-पीले धोले रे !!

सम हैं महातुला के पलड़े
किंचित भी पासंग नहीं है,
डंडी मार तराजू तोले
उस बनिये का ढंग नहीं है,
एक तुलैया हर पल तेरे कर्म-भार को तोले रे बन्दे !
कर्म-भार को तोले रे !!

तेरी तसवीर में ये रंग भरा जाता है

जो खयालों की इबारत में लिखा जाता है
उसे अहसास की आँखों से पढ़ा जाता है।
मेरे महबूब को ख्वाबों में बुलाने के लिए
सारा आकाश सितारों से जड़ा जाता है।
उगते सूरज की किरन ओस में घोली जाये
तेरी तसवीर में ये रंग भरा जाता है।
एक चकवे की लगन, एक पतिंगे की जलन
रूह में फूंक के फिर प्यार किया जाता है।
पूनमी रात पिये ढाल के पूरा प्याला
वो नशा तेरी निगाहों से झरा जाता है।
एक झनकार सी गूंजी है फ़िज़ा में शायद
तेरी महफ़िल में मेरा जिक्र किया जाता है।
चूम ले सेज जो सूली पे सनम की जाकर
ऐसे दीवाने को मंसूर कहा जाता है।

ज़र्रे में जलवा 'तूर'[1] का देखा 'मयूख' ने

आया कोई ख़याल तो क्या-क्या न कर गया
अव्यक्त एक रूप को साकार कर गया।
पल में अनंत-अनादि की तसवीर देख ली
गर्दन उठा के यार का दीदार कर गया।
अब कौन सी उड़ान को पर तोलता है तू
परवाज़[2] तेरी देख के आकाश डर गया।
नापूंगा कायनात[3] को कितने प्रकाश-वर्ष
आँखों में अन्तरिक्ष का विस्तार भर गया।
जन्मान्तर की श्रृंखला अब तक अभंग है
आवागमन की सीढ़ियाँ चढ़कर उतर गया।
ये सिलसिला हयात का गन्तव्य तो नहीं
आया कोई पड़ाव तो पल भर ठहर गया।
ज़र्रे में जलवा तूर का देखा 'मयूख' ने
फिर बुतकदे[4] की राह से होकर गुज़र गया।

1. तूर=एक पर्वत जहाँ यहूदी कथानुसार पैगम्बर मूसा को ईश्वर की दिव्य-ज्योति दिखी। 2. परवाज़=उड़न-क्षमता, 3. कायनात=सृष्टि, 4. बुतकदा=मूर्ति-पूजा-स्थल।

और कितनी दूर तेरा गाँव है

चलते-चलते थक गया हर पाँव है
और कितनी दूर तेरा गाँव है।

नागफनियों सी कँटीली राह में
हम जनम की घाटियाँ घूमा किये
हम नशे में चूर हो झूमा किये
जब तुम्हारे ध्यान के प्याले पिये

जब कभी जिद की हमारी ओख ने
एक सपना दे, उसे बहला दिया
हम अँधेरी कोख से जनमे हुए
रोशनी के रूप से नहला दिया।

जिंदगी की धूप तो है तेज पर
साथ में तेरी लगन की छाँव है।
चलते-चलते थक गया हर पाँव है
और कितनी दूर तेरा गाँव है।

कल्प बीते हैं इसी संकल्प में
द्वैत की दीवार तोड़ी जायगी
तेरे-मेरे बीच कोई भेद हो—
आशिक़ी ऐसे न जोड़ी जायगी

हम 'अनलहक़'[1] बोलते खोजा किये
'कुनफ़िकुन'[2] बन तू कहीं पर खो गया
व्यूह तेरा तोड़ना है इसलिए
सिलसिला आवागमन का हो गया।

हार जाते हर जनम हम खेल में
ओ छली तेरा शकुनिया-दांव है
चलते-चलते थक गया हर पांव है
और कितनी दूर तेरा गांव है !

1. अनलहक=अहं ब्रह्मास्मि, 2. कुनफ़िकुन=एक से अनेक होना (क़ुरान) एकोऽहम् बहुस्याम्।

फिर से चोला बदल के आ जाना

चल रहा हूँ अनेक जन्मों से
अब तलक मेरा घर नही आया
घाटियों में सवाल तो गूंजे
कोई उत्तर मगर नहीं आया ।

किसके सजदे को मैं मना कर दूँ
सामने कोई दर नही आया
भीड मुझको पुकारती तो थी
कोई पहिचाना स्वर नहीं आया ।

रास्तों पर निशान सदियों के
ख्वाब में पीढियो की परछाईं
आस्थाएँ अतीत के पथ से
कितना विस्तार ओढ़कर आईं
फ़ासला रोशनी का तय करने
जब सफर पर कोई निकलता है,
अपने आपे को भूल जाने पर
रोशनी का चराग़ जलता है ।

क्या उजालो की आहटें आईं ?
घोर सन्नाटा किसने चौंकाया ?
हाँ, हमारा ही स्वर कही जाकर
ज्योति के तार झनझना आया ।

आँख लगते ही नींद को तोड़ा
ख्वाब भी आँख भर नहीं आया,
मैं स्वयं की तलाश में अब तक
कितनी गलियों में भटका-भँराया।

फिर से चोला बदल के आ जाना
इस जनम का हिसाब बन्द करो !
गा चुके हो 'मयूख' गीत बहुत
जिन्दगी की किताब बन्द करो।

साक्षी

दर्शक-दीर्घा में जब उसे देखा
नहीं था वह अकेला
उसके वजूद में मौजूद था पूरा मैं
उसमे उपस्थित था मेरा
सारा चैतन्य, समग्र पूर्ण,
दर्शक-दीर्घा में जब उसे देखा।

द्रष्टा भी मैं नही था वहाँ
मैं ही नही था वहाँ
घटित था सिर्फ चैतन्य का विस्तार
असीम अद्वैत और
गवाह का अहोभाव !
साक्षी हूँ—उसी दिन लिखी थी
कबीर ने अपनी पहली साखी।

साक्षी हूँ—दर्शक-दीर्घा में उसे देखा गया
वह था—
ऊँचे बर्फीले पहाड़ों मे झाँकता,
झरनों मे गाता जंगलों में चहचहाता,
फूलों में खिलता, चाँदनी में नहाता,
वह समाहित था सूरज की कौंध और
समन्दर के गर्जन मे
हवा में, पानी मे, पेड़ में, पत्थर में
नर्तन में, गीत में, दर्शक-दीर्घा मे।
साक्षी हूँ—उसी दिन मीरा ने
पैरो में घुँघरू बाँधे थे,
राधा ने महारास भोगा था और

मस्त फ़कीरा बुल्ले शा ने
उसी दिन टेरी थी अपनी पहली काफ़ी ।

नहीं था अकेला वह दर्शक-दीर्घा में
उसमें मौजूद था वेदों का ओंकार
सृष्टि का प्रणव-राग,
उसके वजूद में घुली थी पृथ्वी की पुण्य-गंध,
गंध, धरित्री की, मेरी, तुम्हारी
उसकी बीसों कलाओं में मौजूद थे
पूरे के पूरे हम।
साक्षी हूँ उसी दिन पहली बार
उसके होटों पर बाँसुरी देखी गई।

उसने बखेर दिया था
अछोर विस्तार में अपना
सारा चैतन्य, समग्र पूर्ण ।
दर्शक-दीर्घा में उस दिन घटा था—
व्यष्टि का समिष्ट हो जाना ।
उसी दिन हुए थे—पैग़म्बरों को 'इलहाम'
बुद्धों को महाबोध और
तीर्थंकरो को केवल्य ।

सबमें होकर भी वह नहीं था किसी में
नही था—उसमें भी कोई नही था
फिर भी वहाँ मौजूद था उसका
पूरा का पूरा अखंडित पूर्ण ।
साक्षी हूँ—उसी दिन घोषा था
उपनिषद् ने अपना प्रथम मंत्र—
'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते
पूर्णमादायपूर्णमेवावशिष्यते !'

□□